

चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं ^१ (मु. भेयं च ।)।

मणपज्जवं ति उच्चइ जं जाणइ तं खु णर-लोए ^२ (प्रा. पं. १, १२५। गो. जी.

४३८. परकीयमनोगतोर्थो मन इत्युच्यते साहचर्यात्तस्य पर्ययणं परिगमनं मनःपर्ययः । स. सि. १. ९. मनः प्रतीत्य प्रतिसंधाय वा ज्ञानं मनःपर्ययः । त. रा. वा. १. ९. वा. ४. स मनःपर्ययो ज्ञेयो मनोन्नार्था (मन्यन्तेऽर्थाः?) मनोगताः । परेषां स्वमने वापि तदालम्बनमात्रकम् ।। त. श्लो. वा. १.९.७. परि सर्वतो भावे अवनं अवः । X X अवनं गमनं वेदनमिति पर्यायाः, परि अवः पर्यवः, मनसि मनसो वा पर्यवः मनःपर्यवः सर्वतो मनोद्रव्यपरिच्छेद इत्यर्थः । अथवा मनःपर्यय इति पाठः, तत्र पर्ययणं पर्यवः, भावेऽल् प्रत्ययः, मनसि मनसो वा पर्ययो मनःपर्ययः सर्वतस्तत्पच्छेद इत्यर्थः । X X अथवा मनः-पर्याय-ज्ञानमिति पाठः ततः मनांसि मनोद्रव्याणि पर्येति सर्वात्मना परिच्छिनत्ति मनःपर्यायः, पर्याया भेदा धर्मा बाह्यवस्त्वालोचनप्रकारा इत्यर्थः, तेषु तेषां वा सम्बन्धि ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानम् । नं. सू. पृ. ६६.) ॥१८५॥

संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त-सव्व-भाव-विदं ।

लोगालोग-वित्तिमिरं केवलणाणं मुणेयव्वं ^३ (प्रा. पं. १, १२६। गो. जी. ४६०.

जीवद्रव्यस्य शक्तिगतसर्वज्ञानाविभागप्रतिच्छेदानां व्यक्तिगतत्वात्संपूर्णम् ।
मोहनीयवीर्यान्तरायनिरवशेषक्षयादप्रतिहतशक्तियुक्तत्वात् निश्चलत्वाच्च समग्रं । इंद्रियसहाय-
निरपेक्षत्वात् केवलं । घातिचतुष्टयप्रक्षयात् असपत्नम् । जी. प्र. टी.) ॥१८६॥

इदानीं गतीन्द्रियकायगुणस्थाननेषु मतिश्रुतज्ञानयोरध्वानप्रतिपादनार्थमाह--

जिसका भूतकालमें चिन्तवन किया है, अथवा जिसका भविष्यकालमें चिन्तवन होगा, अथवा जो अर्धचिन्तित है इत्यादि अनेक भेदरूप दूसरेके मनमें स्थित पदार्थको जो जानता है उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान मनुष्यक्षेत्रमें ही होता है ॥१८५॥

जो जीवद्रव्यके शक्तिगत सर्व ज्ञानके अविभाग-प्रतिच्छेदोंके व्यक्त हो जानेके कारण संपूर्ण है, इ पानावरण और वीर्यान्तराय कर्मके सर्वथा नाश हो जानेके कारण जो अप्रतिहतशक्ति है इसलिये समग्र है, जो इंद्रिय और मनकी सहायतासे रहित होनेके कारण केवल है, जो प्रतिपक्षी चार घातिया कर्मोंके नाश हो जानेसे अनुक्रम रहित संपूर्ण पदार्थोंमें प्रवृत्ति करता है इसलिये असपत्न है और जो लोक अलोकमें अइ पानरूपी अन्धकारसे रहित होकर प्रकाशमान हो रहा है उसे केवलज्ञान जानना चाहिये ॥१८६॥

अब गति, इन्द्रिय और कार्यमार्गणान्तर्गत गुणस्थानोंमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके विशेष कथन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं --

पर्यायवचनः, यथाऽधः, क्षेपणमवक्षेपणं, इत्यधोगतभूयोद्रव्याविषयो ह्यवधिः । अथवावधिर्मर्यादा, अवधिना प्रतिबद्धं ज्ञानमवधिज्ञानम् । त. रा. वा. १. ९. वा. ३. अवशब्दोऽधः शब्दार्थः, अव-अधोऽधो विस्तृतं वस्तु धीयते परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः । अथवा अवधिर्मर्यादा रुपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा तदुपलक्षितं ज्ञानमप्यवधिः । यद्वा अवधानम् - आत्मनोऽर्थसाक्षात्करणव्यापारोऽवाधिः । नं. सू. प. ६५.

मदि-अण्णाणी सुद-अण्णाणी एइंदिय-प्पहुडि जाव सासण-सम्माइडि ति ॥ ११६ ॥

मिथ्यादृष्टेः व्देऽप्यज्ञाने भवतां नाम तत्र मिथ्यात्वोदयस्य सत्त्वात् । मिथ्यात्वोदयस्यासत्त्वान्न सासादने तयोः सत्त्वमिति न, मिथ्यात्वं नाम विपरीताभिनिवेशः स च मिथ्यात्वादनन्तानुबन्धिनश्चोत्पद्यते । समस्ति च सासादनस्यानन्तानुबन्ध्युदय इति । कथमेकेन्द्रियाणां श्रुतज्ञानमिति चेत्कथं च न भवति? श्रोत्राभावान्न शब्दावगति-स्तदभावान्न शब्दार्थावगम इति नैष दोषः, यतो नायमेकान्तोऽस्ति शब्दार्थावबोध एव श्रुतमिति । अपि तु अशब्दरूपादपि लिङ्गाल्लिङ्गज्ञानमपि श्रुतमिति । अमनसां तदपि कथमिति चेन्न, मनोऽन्तरेण वनस्पतिषु हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्त्युपलम्भतोऽनेकान्तात् ।

एकेन्द्रियसे लेकर सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानतक मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीव होते हैं ॥ ११६ ॥

शंका -- मिथ्यादृष्टि जीवोंकेभले ही दोनों अज्ञान होवें, क्योंकि, वहां पर मिथ्यात्व कर्मका उदय पाया जाता है । परंतु सासादनमें मिथ्यात्वका उदय नहीं पाया जाता है, इसलिये वहां पर वे दोनों ज्ञान अज्ञानरूप नहीं होना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, विपरीत अभिनिवेशको मिथ्यात्व कहते हैं । और वह मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी इन दोनोंकेनिमित्तसे उत्पन्न होता है । सासादन गुणस्थानवालेकेअनन्तानुबन्धीका उदय तो पाया ही जाता है, इसलिये वहां पर भी दोनों अज्ञान संभव हैं ।

शंका -- एकेन्द्रियोंके श्रुतज्ञान कैसे हो सकता है?

प्रतिशंका -- कैसे नहीं हो सकता है?

शंका -- एकेन्द्रियोंके श्रोत्र इन्द्रियका अभाव होनेसे शब्दका ज्ञान नहीं हो सकता है, और शब्दका ज्ञान नहीं होनेसे शब्दके विषयभूत वाच्यका भी ज्ञान नहीं हो सकता है। इसलिये उनके श्रुतज्ञान नहीं होता है यह बात सिद्ध हो जाती है?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यह कोई एकान्त नहीं है कि शब्दके निमित्तसे होनेवाले पदार्थके ज्ञानको ही श्रुतज्ञान कहते हैं। किन्तु शब्दसे भिन्न रूपादिक लिंगसे भी जो लिंगीका ज्ञान होता है उसे भी श्रुतज्ञान कहते हैं।

शंका -- मनरहित जीवोंके ऐसा श्रुतज्ञान भी कैसे संभव है?

समाधान -- नहीं क्योंकि, मनके विना वनस्पतिकायिक जीवोंके हितमें प्रवृत्ति और अहितसे निवृत्ति देखी जाती है, इसलिये मनसहित जीवोंके ही श्रुतज्ञान माननेमें उनसे अनेकान्त दोष आता है।

विभङ्गज्ञानाध्वानप्रतिपादनार्थमाह --

विभंगणाणं सण्णि-मिच्छाइड्डीणं वा सासणसम्माइड्डीणं वा १ (ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्ग ज्ञानेषु मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिश्चास्ति । स. सि. १. ८.) ॥११७७॥

विकलेन्द्रियाणां किमिति तन्न भवतीति चेन्न, तत्र तन्निबन्धनक्षयोपशमा-भावात् । सोऽपि तत्र किमिति न सम्भवतीति चेन्न, तद्धेतुभवगुणानामभावात् ।

विभङ्गज्ञाने भवप्रत्यये सति पर्याप्तापर्याप्तावस्थयोरपि तस्य सत्त्वं स्यादित्याशङ्किकशिष्याशङ्कापोहनार्थमाह ---

पज्जत्ताणं अत्थि, अपज्जत्ताणं णत्थि ॥ ११८ ॥

अथ स्याद्यदि देवनारकाणां विभङ्गज्ञानं भवनिबन्धनं भवेदपर्याप्तकालेऽपि तेन भवितव्यं तद्धेतोर्भवस्य सत्त्वादिति न, ' सामान्यबोधनाश्च विशेषेष्ववतिष्ठन्ते ' इति

विभंगज्ञानके विशेष प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं ---

विभंगज्ञान संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंके तथा सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है ॥११७७॥

शंका -- विकलेन्द्रिय जीवोंके वह क्यों नहीं होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, वहाँ पर विभंगज्ञानका कारणभूत क्षयोपशम नहीं पाया जाता है।

शंका -- वह क्षयोपशम भी विकलेन्द्रियोंमें क्यों संभव नहीं है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय होता है। परंतु विकलेन्द्रियोंमें ये दोनों प्रकारके कारण नहीं पाये जाते हैं, इसलिये उनकेविभंगज्ञान संभव नहीं है।

विभंगज्ञानको भवप्रत्यय मान लेने पर पर्याप्त और अपर्याप्त इन दोनों अवस्थाओंमें उसका सद्भाव पाया जाना चाहिये इस प्रकार आशंकाको प्राप्त शिष्यके संदेहके दूर करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

विभंगज्ञान पर्याप्तकोंकेही होता है, अपर्याप्तकोंकेनहीं होता है ॥११८॥

शंका -- यदि देव और नारकियोंके विभंगज्ञान भवप्रत्यय होता है तो अपर्याप्तकालमें भी वह हो सकता है, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें भी विभंगज्ञानके कारणरूप भवकी सत्ता पाई जाती है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, 'सामान्य विषयका बोध करानेवाले वाक्य विशेषोंमें रहा

न्यायात् नापर्याप्तविशिष्टं देवनारकत्वं विभङ्गनिबन्धनमपि तु पर्याप्तविशिष्टमिति । ततो नापर्याप्तकाले तदस्तीति सिद्धम् ।

इदानीं सम्यग्मिथ्यादृष्टिज्ञानप्रतिपादनार्थमाह --

सम्मामिच्छाद्द्वि-द्वाणे तिण्णि वि णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि । आभिणिबोहियणाणं मदि-
अण्णाणेण मिस्सयं सुदणाणं सुद-अण्णाणेण मिस्सयं ओहिणाणं विभंगणाणेण मिस्सयं । तिण्णि वि
णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि वा इदि ॥११९॥

अत्रैकवचननिर्देशः किमिति क्रियत इति चेत् कथं च न क्रियते, यतस्त्रीण्यज्ञानानि ततो नैकवचनं
घटत इति न, अइ

ाननिबन्धनमिथ्यात्वस्यैकत्वतोऽज्ञानस्याप्येकत्वाविरोधात् । यथार्थश्रद्धानुविध्दावगमो

ज्ञानम् अयथार्थश्रद्धानुविध्दावगमोऽज्ञानम् । एवं च सति ज्ञानाज्ञानयोर्भिन्नजीवाधिकरणयोर्न मिश्रणं घटत
इति चेत् ? सत्यमेतत्, इष्टत्वात् किन्त्वत्र सम्यग्मिथ्यादृष्टावेवं मा ग्रहीः यतः सम्यग्मिथ्यात्वं नाम कर्म न

करते हैं' इस न्यायके अनुसार अपर्याप्त अवस्थासे युक्त देव और नारक पर्याय विभंगज्ञानका कारण नहीं है। किंतु पर्याप्त अवस्थासे युक्त ही देव और नारक पर्याय विभंगज्ञानका कारण है, इसलिये अपर्याप्त कालमे विभंगज्ञान नहीं होता है यह बात सिद्ध हो जाती है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ज्ञानके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ---

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें आदिके तीनों ही ज्ञान अज्ञानसे मिश्रित होते हैं। आभिनिबोधिकज्ञान मत्तज्ञानसे मिश्रित होता है। श्रुतज्ञान श्रुताज्ञानसे मिश्रित होता है^६ अवधिज्ञान विभंगज्ञानसे मिश्रित होता है^६ अथवा तीनों ही ज्ञान अज्ञानसे मिश्रित होते हैं ॥ ११९ ॥

शंका --- सूत्रमें अज्ञान पदका एकवचन निर्देश क्यों किया है?

प्रतिशंका --- एकवचन निर्देश क्यों नहीं करना चाहिये?

शंका --- क्योंकि, अज्ञान तीन हैं, इसलिये उनका बहुवचनरूपसे प्रयोग बन जाता है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, अज्ञानका कारण मिथ्यात्व एक होनेसे अज्ञानको भी एक मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका --- यथार्थ श्रद्धासे अनुविद्ध अवगमको ज्ञान कहते हैं और अयथार्थ श्रद्धासे अनुविद्ध अवगमको अज्ञान कहते हैं। ऐसी हालतमें भिन्न भिन्न जीवोंके आधारसे रहनेवाले ज्ञान और अज्ञानका मिश्रण नहीं बन सकता है?

समाधान --- यह कहना सत्य है, क्योंकि, हमें यही इष्ट है। किंतु यहां सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें यह अर्थ ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्व कर्म मिथ्यात्व

तन्मिथ्यात्वं तस्मादनन्तगुणहीनशक्तेस्तस्य विपरीताभिनिवेशोत्पादसामर्थ्याभावात्। नापि सम्यक्त्वं तस्मादनन्तगुणशक्तेस्तस्य यथार्थश्रद्धया साहचर्याविरोधात्। ततो जात्यन्तरत्वात् सम्यग्मिथ्यात्वं जात्यन्तरीभूतपरिणामस्योत्पादकम्। ततस्तुदुदयजनितपरिणामसवेतबोधो परिणामसमवेतबोधो न ज्ञान यथार्थश्रद्धयाननुविद्धत्वात्। नाप्यज्ञानमयथार्थ-श्रद्धयाऽसङ्गतत्वात्। ततस्तज्ज्ञानं सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामवज्जात्यन्तरापन्नमित्येकमपि मिश्रमित्युच्यते। यथायथं प्रतिभासितार्थप्रत्ययानुविद्धावगामो ज्ञानम्। यथायथमप्रति-भासितार्थप्रत्ययानुविद्धावगामोऽज्ञानम्। जात्यन्तरीभूतप्रत्ययानुविद्धावगामो जात्यन्तरं ज्ञानम्, तदेव मिश्रज्ञानमिति राध्दान्तविदो व्याचक्षते।

साम्प्रतं ज्ञानानां गुणस्थानाध्वानप्रतिपादनार्थमाह --

आभिनिबोधियणाणं सुदणाणं ओहिणाणमसंजदसम्माइड्ढि-प्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-
छदुमत्था त्ति१ (आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानेषु असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति । स. सि.
१. ८.) ॥१२०॥

तो हो नहीं सकता, क्योंकि, उससे अनन्तगुणी हीन शक्तिवाले सम्यग्मिथ्यात्वमें विपरीताभिनिवेशको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं पाई जाती है। और न वह सम्यक्त्वरूप ही है, क्योंकि, उससे अनन्तगुणी अधिक शक्तिवाले यथार्थ श्रद्धाके साथ उसका (सम्यग्मिथ्यात्वका) साहचर्यसंबन्धका विरोध है। इसलिये जात्यन्तर होनेसे सम्यग्मिथ्यात्व जात्यन्तररूप परिणामोंका ही उत्पादक है। अतः उसके उदयसे उत्पन्न हुए परिणामोंसे युक्त ज्ञान 'ज्ञान' इस संज्ञाको तो प्राप्त हो नहीं सकता है, क्योंकि, उस ज्ञानमें यथार्थ श्रद्धाका अन्वय नहीं पाया जाता है। और उसे अज्ञान भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, वह अयथार्थ श्रद्धाके साथ संपर्क नहीं रखता है। इसलिये वह ज्ञान सम्यग्मिथ्यात्व परिणामकी तरह जात्यन्तररूप अवस्थाको प्राप्त है। अतः एक होते हुए भी मिश्र कहा जाता है।

यथावस्थित प्रतिभासित हुए पदार्थके निमित्तसे उत्पन्न हुए तत्संबन्धी बोधको ज्ञान कहते हैं। न्यूनता आदि दोषोंसे युक्त यथावस्थित अप्रतिभासित हुए पदार्थके निमित्तसे उत्पन्न हुए तत्संबन्धी बोधको अज्ञान कहते हैं। और जात्यन्तररूप कारणसे उत्पन्न हुए तत्संबन्धी ज्ञानको जात्यन्तर-ज्ञान कहते हैं। इसीका नाम मिश्रज्ञान है ऐसा सिध्दान्तको जाननेवाले विद्वान पुरुष व्याख्यान करते हैं।

अब ज्ञानोंका गुणस्थानोंमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं --

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये तीनों असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-
वीतराग छद्मस्थ गुणस्थानतक होते हैं ॥१२०॥

भवतु नाम देवनारकासंयतसम्यग्दृष्टिष्वधिज्ञानस्य सत्त्वं तस्य तद्भावनिबन्धनत्वात् ।
देशविरताद्युपरितनानामपि भवतु तत्सत्त्वं तन्निमित्तगुणस्य तत्र सत्त्वात्, न तिर्यङ्मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टिषु
तस्य सत्त्वं तन्निबन्धनभवगुणानां तत्रासत्त्वादिति चेन्न, अवधिज्ञाननिबन्धनसम्यक्त्वगुणस्य तत्र सत्त्वात् ।
सर्वसम्यग्दृष्टिषु तदनुत्पत्त्यन्यथानुपपत्तेर्नावधिज्ञानं सम्यग्दर्शननिबन्धनमिति चेत्सर्वसंयतेषु

तदनुत्पत्त्यन्यथानुपपत्तेरवधिज्ञानं संयमहेतुकमपि न भवतीति किन्न भवेत् । विशिष्टः संयमस्तद्धेतुरिति न सर्वसंयतानामवधिर्भवतीति चेदत्रापि विशिष्टसम्यक्त्वं तद्धेतुरिति न सर्वेषां तद्भवति को विरोधः स्यात्? औपशमिकक्षायिककक्षायोपशमिकभेदभिन्नेषु त्रिष्वपि सम्यक्त्व-विशेषेष्ववधिज्ञानोत्पत्तेर्व्यभिचारदर्शनान्न तत्तद्विशेषनिबन्धनमपीति चेत्तर्ह्यत्रापि

शंका -- देव और नारकीसंबन्धी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंमे अवधिज्ञानका सद्भाव भले ही रहा आवे, क्योंकि, उनके अवधिज्ञान भवनिमित्तक होता है। उसी प्रकार देशविरति आदि ऊपरके गुणस्थानोंमें भी अवधिज्ञान रहा आवे, क्योंकि, अवधिज्ञानकी उत्पत्तिके कारण-भूत गुणोंका वहां पर सद्भाव पाया जाता है। परंतु असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्योंमें उसका सद्भाव नहीं पाया जा सकता है, क्योंकि, अवधिज्ञानकी उत्पत्तिके कारण भव और गुण असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्योंमें नहीं पाये जाते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अवधिज्ञानकी उत्पत्तिके कारणरूप सम्यग्दर्शनका असंयत-सम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्योंमें सद्भाव पाया जाता है।

शंका -- चूंकि संपूर्ण सम्यग्दृष्टियोंमें अवधिज्ञानकी अनुत्पत्ति अन्यथा बन नहीं सकती है, इससे मालूम पडता है कि सम्यग्दर्शन अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण नहीं है?

समाधान -- यदि ऐसा है तो संपूर्ण संयतोंमें अवधिज्ञानकी अनुत्पत्ति अन्यथा बन नहीं सकती है, इसलिये संयम भी अवधिज्ञानका कारण नहीं है, ऐसा क्यों न मान लिया जाय?

शंका -- विशिष्ट संयम ही अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है, इसलिये समस्त संयतोंके अवधिज्ञान नहीं होता है, किन्तु कुछकेही होता है?

समाधान -- यदि ऐसा है तो यहां पर भी ऐसा ही मान लेना चाहिये कि असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्योंमें भी विशिष्ट सम्यक्त्व ही अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है। इसलिये सभी सम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्योंमें अवधिज्ञान नहीं होता है, किन्तु कुछकेही होता है, ऐसा मान लेनेमें क्या विरोध आता है?

शंका -- औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीनों ही प्रकारके विशेष सम्यग्दर्शनोंमें अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें व्यभिचार देखा जाता है। इसलिये सम्यग्दर्शनविशेष अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण यह नहीं कहा जा सकता है।

समाधान -- यदि ऐसा है तो संयममें भी सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि,

सामायिक-छेदोपस्थापन-परिहार-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यात-भेदभिन्नैः पञ्चभिरपि संयमैः देशविरत्या च तस्य व्यभिचारदर्शान्नावधिज्ञानं संयमविशेषनिबन्धनमपीति समानमेतत् । असंख्यातलोकमात्रसंयमपरिणामेषु केचिद्विशिष्टाः परिणामास्तद्धेतव इति नायं दोषश्चेत्तर्हि सम्यग्दर्शनपरिणामेष्वप्यसंख्येयलोकपरिमाणेषु केचिद्विशिष्टाः सम्यक्त्वपरिणामाः सहकारिकारणव्यपेक्षास्तद्धेतव इति स्थितम् ।

मनःपर्ययज्ञानस्वामिप्रतिपादनार्थमाह --

मणपज्जवणाणी पमत्तसंजद-प्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदराग-छदुमत्था त्ति ^१ (मनःपर्ययज्ञाने प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः सन्ति । स. सि. १. ८.) ॥१२१॥

पर्यायपर्यायिणोरभेदापेक्षया मनःपर्ययज्ञानस्यैव मनःपर्ययज्ञानिव्यपदेशः । देशविरताद्यधस्तनगुणभूमिस्थितानां किमिति मनःपर्ययज्ञानं न भवेदिति चेन्न, संयमा-संयमासंयमत उत्पत्तिविरोधात् । संयममात्रकारणत्वे सर्वसंयतानां किन्न तद्भवेदिति

सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात इन पांच प्रकारके विशेष संयमोंके साथ और देशविरतिके साथ भी अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका व्यभिचार देखा जाता है, इसलिये अवधिज्ञानकी उत्पत्ति संयम-विशेषके निमित्तसे होती है यह भी तो नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, सम्यग्दर्शन और संयम इन दोनोंको अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्त मानने पर आक्षेप और परिहार समान हैं ।

शंका -- असंख्यात लोकप्रमाण संयमरूप परिणामोंमें कितने ही विशेष जातिके परिणाम अवधिज्ञानकी उत्पत्तिके कारण होते हैं, इसलिये पूर्वोक्त दोष नहीं आता है?

समाधान -- यदि ऐसा है तो असंख्यात लोकप्रमाण सम्यग्दर्शनरूप परिणामोंमें दूसरे सहकारी कारणोंकी अपेक्षासे युक्त होते हुए कितने ही विशेष जातिके सम्यक्त्वरूप परिणाम अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण हो जाते हैं यह बात निश्चित हो जाती है।

अब मनःपर्ययज्ञानके स्वामीके प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं --

मनःपर्ययज्ञानी जीव प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छन्नस्थ गुणस्थानतक होते हैं ॥

१२१॥

पर्याय और पर्यायीमें अभेदकी अपेक्षासे मनःपर्ययज्ञानका ही मनःपर्ययज्ञानीरूपसे उल्लेख किया है।

शंका -- देशविरति आदि नीचेके गुणस्थानवर्ती जीवोंके मनःपर्ययज्ञान क्यों नहीं होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, संयमासंयम और असंयमके साथ मनःपर्ययज्ञानकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है।

चेदभविष्यद्यदि संयम एक एव तदुत्पत्तेः कारणतामगमिष्यत् । अपि त्वन्येऽपि १ (मु. अप्यन्येऽपि तु ।) तद्धेतवः सन्ति तद्वैकल्यान्न सर्वसंयतानां तदुत्पद्यते । केऽन्ये तद्धेतव इति चेद्विशिष्टद्रव्यक्षेत्रकालादयः ।

केवलज्ञानाधिपतिगुणभूमिप्रतिपादनार्थमाह --

केवलणाणी तिसु द्वाणेषु सजोगिकेवली अजोगिकेवली सिध्दा चेदि २ (केवलज्ञाने सयोगोऽयोगश्च । स. सि. १. ८.) ॥ १२२ ॥

अथ स्यान्नार्हतः केवलज्ञानमस्ति तत्र नोऽन्द्रियावरणक्षयोपशमजनितमनसः सत्त्वात्, न, प्रक्षीणसमस्तावरणे भगवत्यर्हति ज्ञानावरणक्षयोपशमाभावात्तत्कार्यस्य मनसोऽसत्त्वात् । न वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितशक्त्यस्तित्वद्वारेण तत्सत्त्वं प्रक्षीण --

शंका -- यदि संयममात्र मनःपर्ययज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है तो समस्त संयमियोंके मनःपर्ययज्ञान क्यों नहीं होता है?

समाधान -- यदि केवल संयम ही मनःपर्ययज्ञानकी उत्पत्तिका कारण होता तो ऐसा भी होता। किन्तु अन्य भी मनःपर्ययज्ञानकी उत्पत्तिके कारण हैं, इसलिये उन दूसरे हेतुओंके न रहनेसे समस्त संयमोंके मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न नहीं होता है।

शंका -- वे दूसरे कौनसे कारण हैं?

समाधान -- विशेष जातिके द्रव्य, क्षेत्र और कालादि अन्य कारण हैं। जिनके विना सभी संयमियोंके मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न नहीं होता है।

अब केवलज्ञानके स्वामीके गुणस्थान बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं --

केवलज्ञानी जीव सयोगिकेवली, अयोगिकेवली और सिद्ध इन तीन स्थानोंमें होते हैं ॥ १२२ ॥

शंका -- अरिहंत परमेष्ठीके केवलज्ञान नहीं है, क्योंकि, यहां पर नोइन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए मनका सद्भाव पाया जाता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिनके संपूर्ण आवरणकर्म नाशको प्राप्त हो गये हैं ऐसे अरिहंत परमेष्ठीमें ज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम नहीं पाया जाता है, इसलिये क्षयोपशमके कार्यरूप मन भी उनके नहीं पाया जाता है। उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई शक्तिकी अपेक्षा भी यहां पर मनका सद्भाव नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि, जिनके वीर्यान्तराय कर्मका क्षय पाया जाता है ऐसे जीवोंके वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई शक्तिके सद्भाव माननेमें विरोध आता है।

वीर्यान्तरायस्य वीर्यान्तरायजनितशक्त्यस्तित्वविरोधात् । कथं पुनःस सयोग १ (मु. पुनः सयोग १) इति चेन्न, प्रथमचतुर्थभाषोत्पत्तिनिमित्तात्मप्रदेशपरिस्पन्दस्य सत्त्वापेक्षया तस्य सयोगत्वा-विरोधात् । तत्र मनसोऽभावे तत्कार्यस्य वचसोऽपि न सत्त्वमिति चेन्न, तस्य ज्ञानकार्यत्वात् । अक्रमज्ञानात्कथं क्रमवतां वचनानामुत्पत्तिरिति चेन्न, घटविषयाक्रम- ज्ञानसमवेतकुम्भकाराध्दटस्य क्रमेणोत्पत्त्युलम्भात् । मनोयोगाभावे सूत्रेण सह विरोधः स्यादिति चेन्न, मनःकार्यप्रथमचतुर्थवचसोः सत्त्वापेक्षयोपचारेण तत्सत्त्वोपदेशात् । जीवप्रदेशपरिस्पन्दहेतुनो कर्मजनितशक्त्यस्तित्वापेक्षया वा तत्सत्त्वान्न विरोधः ।

संयममार्गणाप्रतिपादनार्थमाह --

संजमाणुवादेण अत्थि संजदा सामाइय-छेदोवद्वावण-सुद्धि-

संजदा परिहार-सुद्धि-संजदा सुहुम-सांपराइय-सुद्धि संजदा

जहाक्खाद-विहार-सुद्धि-संजदा संजदासंजदा असंजदा चेदि ।।१२३।।

शंका -- फिर अरिहंत परमेष्ठीको सयोगी कैसे माना जाय?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, प्रथम (सत्य) और चतुर्थ (अनुभय) भाषाकी उत्पत्तिके निमित्तभूत आत्मप्रदेशोंका परिस्पन्द वहां पर पाया जाता है, इसलिये इस अपेक्षासे अरिहंत परमेष्ठीके सयोगी होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका -- अरिहंत परमेष्ठीमें मनका अभाव होने पर मनके कार्यरूप वचनका सद्भाव भी नहीं पाया जा सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, वचन ज्ञानके कार्य हैं, मनके नहीं।

शंका -- अक्रम ज्ञानसे क्रमिक वचनोंकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, घटविषयक अक्रम ज्ञानसे युक्त कुंभकारव्द्वारा क्रमसे घटकी उत्पत्ति देखी जाती है। इसलिये अक्रमवर्ती ज्ञानसे क्रमिक वचनोंकी उत्पत्ति मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका -- सयोगिकेव्रलीके मनोयोगका अभाव मानने पर 'सच्चमणजोगो असच्चमोसमणजोगो सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेव्रलि ति' इस पूर्वोक्त सूत्रके साथ विरोध आ जायगा ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, मनके कार्यरूप प्रथम और चतुर्थ भाषाके सद्भाव की अपेक्षा उपचारसे मनके सद्भाव मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है। अथवा जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दके कारणरूप मनोवर्गणारूप नोकर्मसे उत्पन्न हुई शक्तिके अस्तित्वकी अपेक्षा सयोगिकेव्रलीमें मनका सद्भाव पाया जाता है ऐसा मान लेनेमें भी कोई विरोध नहीं आता है।

अब संयममार्गणाके प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं --

संयममार्गणाके अनुवादसे सामायिकशुद्धिसंयत, छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहार-

अत्राप्यभेदापेक्षया पर्यायस्य पर्यायिव्यपदेशः । सम् सम्यक् सम्यग्दर्शनज्ञानानु-सारेण यताः
बहिरङ्गास्त्रवेभ्यो विरताः संयताः । सर्वसावद्ययोगात् विरतोऽस्मीति सकलसावद्ययोगविरतिः
सामायिकशुद्धिसंयमो १ (रागद्वोसविरहिओ समो ति अयणं अयो ति गमणं ति । समगमणं ति समाओ स

एव सामाज्यं नाम ।। अहवा भवं समाए निव्वतं तेणं तम्मयं वावि । जं तप्पओयणं वा तेण व सामाज्यं नेयं ।। अहवा समाइं सम्मत्तनाणचरणाइं तेसु तेहिं वा । अयणं अओ समाओ स एव सामयइं नाम ।। अहवा समस्स आओ गुणाण लाभो त्ति जो समाओ सो । अहवा समाणमाओ नेओ सामाज्यं नाम । अहवा सामं मित्ती तत्थ अओ (गमणं) तेण होइ सामाओ । अहवा सामस्साओ लाभो सामाज्यं णेयं ।। सम्ममओ वा समओ सामाज्य-मुभयविद्धिभावाओ । अहवा सम्मस्स आओ लाभो सामाज्यं होइ । अहवा निरुत्तविहिणा सामं सम्मं समं च जं तस्स । इकमप्पए पवेसणमेयं सामाज्यं नेयं । किं पुण तं सामाज्यं सब्बसावज्जजोगविरइ त्ति ।। वि.भा. ४२२०-४२२७.) द्रव्यार्थिकत्वात् । एवंविधैकव्रतो मिथ्यादृष्टिः किन्न स्यादिति चेन्न, आक्षिप्ताशेषविशेषसामान्यार्थिनो नयस्य सम्यग्दृष्टित्वाविरोधात् । आक्षिप्ताशेषविशेषरूपमिदं २ (मु. शेषरूपमिदं ।) सामान्यमिति कुतोऽवसीयत इति चेत्सर्वसावद्ययोगोपादानात् । नह्येकस्मिन् सर्वशब्दः प्रवर्तते विरोधात् । स्वान्तर्भाविताशेषसंयमविशेषैक्यमः सामायिकशुद्धिसंयत ३ (मु. शुद्धिसंयम ।) इति यावत् । तस्यैकस्य

शुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपराय-शुद्धि-संयत, यथाख्यात-विहार-शुद्धि-संयत ये पांच प्रकारके संयत तथा संयतासंयत और असंयत जीव होते हैं ।।१२३।।

यहां पर भी अभेदकी अपेक्षासे पर्यायका पर्यायीरूपसे कथन किया है। 'सम्' उपसर्ग सम्यक् अर्थका वाची है, इसलिये सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक 'यताः' अर्थात् जो बहिरंग और अन्तरंग आश्रवोंसे विरत हैं उन्हें संयत कहते हैं ।

'मैं सभी प्रकारके सावद्ययोगसे विरत हूँ' इस प्रकार द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा सकल सावद्ययोगके त्यागको सामायिक-शुद्धि-संयम कहते हैं ।

शंका -- इस प्रकार एक व्रतका नियमवाला जीव मिथ्यादृष्टि क्यों नहीं हो जायगा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिसमें संपूर्ण चारित्रके भेदोंका संग्रह होता है, ऐसे सामान्यग्राही द्रव्यार्थिक नयको समीचीन दृष्टि माननेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका -- यह सामान्य संयम अपने संपूर्ण भेदोंका संग्रह करनेवाला है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान -- 'सर्वसावद्ययोग' पदके ग्रहण करनेसे ही, यहां पर अपने संपूर्ण भेदोंका संग्रह कर लिया गया है, यह बात जानी जाती है । यदि यहां पर संयमके किसी एक भेदकी ही मुख्यता होती तो 'सर्व' शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सकता था, क्योंकि, ऐसे स्थल पर 'सर्व' शब्दके प्रयोग करनेमें विरोध आता है ।

व्रतस्य छेदेन व्दित्र्यादिभेदेनोपस्थापनं व्रतसमारोपणं छेदोपस्थापनशुद्धिसंयमः । सकलव्रतानामेकत्वमापाद्य एकयमोपादानाद् द्रव्यार्थिकनयः सामायिकशुद्धिसंयमः । तदैवैकं व्रतं पञ्चधा बहुधा वा विपाट्य धारणात् पर्यायार्थिकनयः छेदोपस्थापन-शुद्धिसंयमः ^१ (छेदेन पूर्वपर्यायनिरोधेन उपस्थापनमारोपणं महाव्रतानां यत्र तच्छेदोपस्थापनम् । x x छेतूण तु परियागं पोराणं ठविति अप्पाणं । धम्मम्मि पंचजामे छेओवड्ढावणे स खलु । पं. भा. (छेओवड्ढावण. अभि. रा. को .)) निशितबुद्धिजनानुग्रहार्थं द्रव्यार्थिकनयदेशना २ (मु. नयादेशना ।), मन्दधियामनुग्रहार्थं पर्यायार्थिकनयदेशना ३ (मु. नयादेशना ।)^२ ततो नानयोः संयमयोरनुष्ठानकृतो विशेषोऽस्तीति । व्दितयदेशनानुगृहीत ४(मु. देशेना ।) एक एव संयम इति चेन्नैष दोषः, इष्टत्वात् । अनेनैवाभिप्रायेण सूत्रे पृथक् न शुद्धिसंयतग्रहणं कृतम् ।

परिहारप्रधानः शुद्धिसंयतः परिहारशुद्धिसंयतः । त्रिंशद्वर्षाणि यथेच्छया भोगमनुभूय सामान्यरूपेण विशेषरूपेण वा संयममादाय द्रव्यक्षेत्रकालभावगतपरिमिता-परिमितप्रत्याख्यानप्रतिपादकप्रत्याख्यानपूर्वमहावर्णवं सम्यगधिगम्य व्यपगतसकल-

इस कथनसे यह सिद्ध हुआ कि जिसने संपूर्ण संयमके भेदोंको अपने अन्तर्गत कर लिया है ऐसे अभेदरूपसे एक यमको धारण करनेवाला जीव सामायिक-शुद्धि-संयत कहलाता है ।

उस एक व्रतका छेद अर्थात् दो, तीन आदिके भेदसे उपस्थान करनेको अर्थात् व्रतोंके आरोपण करनेको छेदोपस्थापना-शुद्धि-संयम कहते हैं । संपूर्ण व्रतोंको सामान्यकी अपेक्षा एक मानकर एक यमको ग्रहण करनेवाला होनेसे सामायिक-शुद्धि-संयम द्रव्यार्थिकनयरूप है । और उसी एक व्रतको पांच अथवा अनेक प्रकारके भेद करके धारण करनेवाला होनेसे छेदोपस्थापना-शुद्धि-संयम पर्यायार्थिकनयरूप है ।

यहां पर तीक्ष्णबुद्धि मनुष्योंके अनुग्रहके लिये द्रव्यार्थिक नयका उपदेश दिया गया है । और मन्दबुद्धि प्राणियोंका अनुग्रह करनेके लिये पर्यायार्थिक नयका उपदेश दिया गया हैं । इसलिये इन दोनों संयमोंमें अनुष्ठानकृत कोई विशेषता नहीं है ।

शंका --- तब तो उपदेशकी अपेक्षा संयमको भले ही दो प्रकारका कह लिया जावे, पर वास्तवमें तो वह एक ही है?

समाधान --- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यह कथन हमें इष्ट ही है । और इसी अभिप्रायसे सूत्रमें स्वतन्त्ररूपसे (सामायिक पदके साथ) 'शुद्धिसंयत' पदका ग्रहण नहीं किया है ।

जिसके (हिंसाका) परिहार ही प्रधान है ऐसे शुद्धिप्राप्त संयतोंको परिहार-शुद्धी-संयत कहते हैं । तीस वर्षतक अपनी इच्छानुसार भोगोंको भोगकर सामान्यरूपसे अर्थात् सामायिक संयमको और विशेषरूपसे अर्थात् छेदोपस्थापना संयमको धारण कर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार परिमित या अपरिमित प्रत्याख्यानके प्रतिपादन करनेवाले प्रत्याख्यान पूर्वरूपी महार्णवमें अच्छी तरह प्रवेश करके जिसका संपूर्ण संशय दूर हो गया है और जिसने

संशयस्तपोविशेषात्समुत्पन्नपरिहारध्विर्दस्तीर्थकरपादमूले परिहारशुद्धिसंयममादत्ते १ (तीसं वासो जम्में वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले । पच्चक्खाणं पढ्ढिदो संझूणदुगाउयविहारो ॥ गो. जी. ४७३.) एवमादाय स्थानगमनचङ्कःक्रमणाशनपानासनादिषु व्यापरेष्वशेषप्राणिपरिहरणदक्षः २ (परिहारर्धिसमेतः षड्जीवनिकायसंकुले विहरन् । पयसेव पन्नपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन । गो. जी. ४७३. जी. प्र. टी. उद्धृतम् ।) परिहारशुद्धिसंयतो नाम ।

साम्परायः कषायः, सूक्ष्मः साम्परायो येषां ते सूक्ष्मसांपरायाः । शुद्धाश्च ते संयताश्च शुद्धसंयताः । सूक्ष्मसाम्परायाश्च ते शुद्धिसंयताश्च सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयताः । त एव व्दिधोपात्तसंयमा यदा सूक्ष्मीकृतकषायाः भवन्ति तदा ते सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयता इत्युच्यन्ते इति यावत् ।

यथाख्यातो यथाप्रतिपादितः विहारः कषायाभारुरूपमनुष्ठानम् । यथाख्यातो विहारो येषां ते यथाख्यातविहाराः । यथाख्यातविहाराश्च ते शुद्धिसंयताश्च यथाख्यातविहारशुद्धिसंयताः ३ (अहसद्वो जाहत्थे आडोऽमिहीए कहियमक्खायं । चरणमकसायमुदितं तमहक्खायं जहक्खाय ॥ तं दुविगप्पं

छउमत्थकेवलिविहाणओ पुणेकेवक्रं। खयसमजसयोगाजोगिकेवलिविहाणओ दुविहं । वि. भा. १२७९.)^६
सुगममन्यत् ।

संयमानुवादेनासंयतानां संयतासंयतानां च न ग्रहणं प्राप्नुयादिति चेन्न,

तपोविशेषसे परिहार ऋद्धिको प्राप्त कर लिया है ऐसा जीव तीर्थंकरकेपादमूलमें परिहार-शुद्धि-संयमको ग्रहण करता है । इस प्रकार संयमको धारण करके जो खडे होना, गमन करना यहां वहां विहार करना, भोजन करना, पान करना और बैठना आदि संपूर्ण व्यापारोंमें प्राणियोंकी हिंसाकेपरिमहारमें दक्ष हो जाता है उसे परिहार-शुद्धि-संयत कहते हैं ।

सांपराय कषायको कहते हैं। जिनकी कषाय सूक्ष्म हो गई है उन्हें सूक्ष्मसांपराय कहते हैं। जो संयत विशुद्धिको प्राप्त हो गये हैं उन्हें शुद्धिसंयत कहते हैं। जो सूक्ष्मकषायवाले होते हुए शुद्धिप्राप्त संयत हैं उन्हें सूक्ष्मसांपराय-शुद्धि-संयत कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सामायिक या छेदोपस्थापना संयमको धारण करनेवाले साधु जब अत्यन्त सूक्ष्मकषायवाले हो जाते हैं तब वे सूक्ष्मसांपरायशुद्धिसंयत कहे जाते हैं ।

परमागममें विहार अर्थात् कषायोंके अभावरूप अनुष्ठानका जैसा प्रतिपादन किया गया है तदनुकूल विहार जिनके पाया जाता है उन्हें यथाख्यातविहार कहते हैं। जो यथाख्यातविहारवाले होते हुए शुद्धिप्राप्त संयत हैं वे यथाख्यातविहार-शुद्धि-संयत कहलाते हैं। शेष कथन सुगम है।

शंका -- संयम मार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें संयतासंयत और असंयतोंका ग्रहण नहीं हो सकता है?

आम्रतरुप्रधानवनान्तस्थनिम्बानामपि आम्रवनव्यपदेशदर्शनतोऽनेकान्तात् । उक्तं च --

संगहिय-सयल-संजममेय-जममणुत्तरं दुरवगम्मं

जीवो समुव्वहंतो समाइय-संजदो होई^१ (प्रा. पं. १, १२९ । गो. जी. ४७०.) ॥१८७॥

छेत्तूण य परियायं पोरणं जो ठवेइ अप्पाणं ।

पंचजमे धम्मे सो छेदोवड्ढावओ जीवो^२ (प्रा. पं. १, १३० । गो. जी. ४७१. छेदेन

प्रायश्चित्ताचरणेन उपस्थापनं यस्य स छेदोपस्थापन इति निरुक्तेः । अथवा प्रायश्चित्तेन

स्वकृतदोषपरिहाराय पूर्वकृततपस्तद्दोषानुसारेण छित्वा आत्मानं तन्निरवद्य-संयमे स्थापयति स
छेदोपस्थापक-संयतः, स्वतपश्छेदे सति उपस्थापनं यस्य स छेदोपस्थापन इत्याधिकरण- व्युत्पत्तेः । जी.
प्र. टी.) ॥१८८॥

पंच-समिदो ति-गुत्तो परिहरइ सदा वि जो हु सावज्जं ।

पंच-जमेय-जमो वा परिहारो संजदो सो हु ^३ (प्रा. पं. १, १३१। गो. जी. ४७२.
परिहारकप्पं पवक्खाम्मि परिहरंति जहा विऊ। आदिमज्झव-साणेसु आणुपुव्विं जहक्कमं ॥३६९॥
सत्तावीसं जहण्णेणं उक्कोसेण सहस्ससो ॥ निग्गंथसूरा भगवंतो सब्बग्गोणं वियाहिया ॥३७२॥
सयग्गलो या उक्कोसा जहण्णेण तओ गणा। गणो य णवओ वुत्तो एमेता पड्वित्तिओ ॥३७३॥ एगं
कप्पठियं कुज्जा चत्तारि परिहारिए। अणुपरिहारिगा चेव चउरो तेसिं तु ठावए ॥३७४॥ ण य तेसिं
जायती विग्घं जा मासा दस अड्ड य। ण वेयणा ण वातंका णेव अण्णे उवद्दवा ॥३७५॥ अट्टारससु पुण्णेसु
होज्ज एते उवद्दवा। ऊणिए ऊणिए यावि गणमेरा इमा भवे ॥३७६॥) पड्विन्नजिणिंदस्स पादमूलम्मि जे
विऊ। ठावयंतिआ ते अण्णे ण उ ठावितठावगा ॥३८३॥ सब्बे चरितमंता य दंसणे परिनिड्डिया।
णवपुव्विया जहण्णेणं उक्कोसं दसपुव्विया ॥३८४॥ पंचविहे ववहारे कप्पे ते दुविहम्मि य । दसविहे य
पच्छित्ते सब्बे वि परिनिड्डिया ॥३८५॥ पड्विपुच्छं वायं णं मोत्तूणं णत्थि संकहा। आलावो अत्तणिदेसो
परिहारस्स कारणे ॥३९६॥ वारस दसड्ड दस अड्ड छच्चड्ड छ चउरो य उक्कोस। मज्झिम जहन्नगा ऊ
वासासिसिरगिम्हे उ ॥३९४॥ आयं विलवारसंग पत्तेयं परिहारगा परिहरंति ।) ॥१८९॥

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिस वनमें आम्रवृक्षोंकी प्रधानता है उसमें रहनेवाले नीमके वृक्षोंकी
भी 'आम्रवन' ऐसी संज्ञा देखनेमें आती है। अतएव अनेकान्तका आश्रय करनेसे संयतासंयत और
असंयतोंका भी संयम मार्गणामें ग्रहण किया है। कहा भी है --

जिसमें समस्त संयमोंका संग्रह कर लिया गया है ऐसे लोकोत्तर और दुरधिगम्य अभेदरूप एक
यमको धारण करनेवाला जीव सामायिकसंयत होता है ॥१८७॥

जो पुरानी सावद्यव्यापाररूप पर्यायको छेदकर पांच यमरूप धर्ममें अपनेको स्थापित करता है वह
जीव छेदोपस्थापक संयमी कहलाता है ॥१८८॥

जो पांच समिति और तीन गुप्तियोंसे युक्त होता हुआ सदा ही सावद्ययोगका परिहार करता है तथा पांच यमरूप छेदोपस्थापना संयमको और एक यमरूप सामायिकसंयमको धारण करता है वह परिहार-शुद्धि-संयत कहलाता है ॥१८९॥

अणुलोभं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवओ वा ।

सो सुहुम-सांपराओ जहक्खादेणूणओ किं पि १ (प्रा. पं. १, १३२। गो. जी. ४७४)

॥१९०॥

उवसंते खीणे वा असुहे कम्मम्हि मोहणीयम्हि ।

छदुमत्थो व जिणो वा जहखादो संजदो सो हु २ (प्रा. पं. १, १३३। गो. जी. ४७५)

॥१९१॥

पंच-ति-चउव्विहेहि अणु-गुण-सिक्खा-वएहिं-संजुत्ता ।

वुच्चंति देस-विरया सम्माइड्डी ज्झारिय-कम्मा ३ (प्रा. पं. १, १३५ । गो. जी. ४७६)

॥१९२॥

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-राइभते य ।

बम्हारंभ-परिग्गह-अणुमण-उद्विद्ध देवविरदेदे ४ (प्रा. प्रं. १, १३६ । गाथेयं पूर्वमपि ७४ गाथाङ्केन आगता ।) ॥१९३॥

जीवा चोदस-भेया इंदिय-विसया तहड्वीसं तु ।

जे तेसु णेव विरदा असंजदा ते मुणेयव्वा ५ (प्रा. पं. १, १३७। गो. जी. ४७८) ॥१९४॥

चाहे उपशमश्रेणीका आरोहण करनेवाला हो अथवा क्षपकश्रेणीका आरोहण करनेवाला हो, परंतु जो जीव सूक्ष्म लोभका अनुभव करता है उसे सूक्ष्मसांपराय-शुद्धि-संयत कहते हैं। यह संयत यथाख्यात संयमसे कुछ कम संयमको धारण करनेवाला होता है ॥१९०॥

अशुभ मोहनीय कर्मके उपशान्त अथवा क्षय हो जाने पर ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ और तेरहवें चौदहवें गुणस्थानवर्ती जिन यथाख्यात-शुद्धि-संयत होते हैं ॥१९१॥

जो पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंसे संयुक्त होते हुए असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा करते हैं ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव देशविरत कहे जाते हैं ॥१९२॥

दर्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तविरत, ब्रह्मचारी, आरंभविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत ये देशविरतके ग्यारह भेद हैं ॥१९३॥

जीवसमास चौदह प्रकारके होते हैं और इन्द्रिय तथा मनके विषय अट्टाईस प्रकारके होते हैं। जो जीव इनसे विरत नहीं हैं उन्हें असंयत जानना चाहिये ॥१९४॥

अभिगहितएसणाए पंचणह वि एगो संभोगो ॥३९५॥ परिहारिओ छम्मासे अणुपरिहारिओ वि छम्मासा । कप्पड्डितो वि छम्मासे तेए अट्टारस उ मासे ॥३९६॥ गएहिं छहिं मासेहिं निव्विड्डा य भवंति ते । ततो पच्छ य ववहारं पड्डवंति अणुपरिहारिया ॥३९८॥ गएहिं छहिं मासेहिं निव्विड्डा य भवंति ते । वहइ कप्पड्डिओ पच्छ परिहार तहाविधं ॥३९९॥ अट्टारसहिं मासेहि कप्पो होंति समाणितो । मूलड्डवणाए समं छम्मासा उ अणुणा ॥४००॥ वृ. ६ उ. (अभि. रा. को. परिहारविसुद्धिय.)

संयतानां गुणस्थान^१ (मु. स्थानानां संख्या ।) संख्यानिरुपणार्थमाह--

संजदा पमत्तसंजद-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति २ (संयमानुवादेन संयताः प्रमत्तादयोऽयोगकेवल्यन्ताः । स. सि. १. ८.) ॥१२४॥

अथ स्याद् बुद्धिपूर्विका सावद्यविरतिः संयमः अन्यथा काष्ठादिष्वपि संयम-प्रसङ्गात् । न च केवलिषु तथाभूता निवृत्तिरस्ति ततस्तत्र संयमो दुर्घट इति नैष दोषः, अघातिचतुष्टयविनाशापेक्षया समयं प्रत्यसंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरापेक्षया च सकलपापक्रियानिरोधलक्षणपारिणामिकगुणाविर्भावापेक्षया च तत्र ३ (मु. पेक्षया न, तत्र ।) संयमोपचारात् । अथवा प्रवृत्त्यभावापेक्षया मुख्य संयमोऽस्ति ४ (सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयताः प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिस्थानान्ताः । स. सि. १. ८.)^६ न काष्ठेन व्यभिचारस्तत्र प्रवृत्त्यभाव-तस्तन्निवृत्त्यनुपपत्तेः । सुगममन्यत् ।

द्रव्यपर्यायार्थिकनयव्यनिबन्धनसंयमगुणप्रतिपादनार्थमाह --

सामाज्य-च्छेदोवद्वावण-सुद्धि-संजदा पमत्तसंजद-प्पहुडि जाव अणियट्टि ति ॥ १२५ ॥

अब संयतोंमें गुणस्थानोंकी संख्याकेनिरूपण करनेकेलिये सूत्र कहते हैं --

संयत जीव प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेव्रली गुणस्थानतक होते हैं ॥ १२४ ॥

शंका -- बुद्धिपूर्वक सावद्ययोगके त्यागको संयम कहना तो ठीक है। यदि ऐसा न माना जाय तो काष्ठ आदिमें भी संयमका प्रसंग आजायगा । किंतु केव्रलीमें बुद्धिपूर्वक सावद्ययोगकी निवृत्ति तो पाई नहीं जाती है इसलिये उनमें संयमका होना दुर्घट ही है ?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, चार अघातिया कर्मोंके विनाश करनेकी अपेक्षा और समय समयमें असंख्यातगुणी श्रेणीरूपसे कर्मनिर्जरा करनेकी अपेक्षा संपूर्ण पापक्रियाके निरोधस्वरूप पारिणामिक गुण प्रकट हो जाता है, इसलिये इस अपेक्षासे वहां संयमका उपचार किया जाता है । अतः वहां पर संयमका होना दुर्घट नहीं है । अथवा प्रवृत्तिके अभावकी अपेक्षा वहां पर मुख्य संयम है । इसप्रकार जिनेन्द्रमें प्रवृत्त्यभावसे मुख्य संयमकी सिद्धि करने पर काष्ठसे व्यभिचार दोष भी नहीं आता है, क्योंकि, काष्ठमें प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है, तब उसकी निवृत्ति भी नहीं बन सकती है । शेष कथन सुगम हैं ।

अब द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंके निमित्तसे माने गये संयमके गुणस्थान प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं । सामायिक और छेदोपस्थापनारूप शुद्धिको प्राप्त संयत जीव प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतक होते हैं ॥१२५॥
